ॐ

तत्सद्ब्रह्मणे नमः

मुण्डकोपनिषद्

मन्त्रार्थ, शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थसहित

भावाभावपदातीतं भावाभावात्मकं च यत् ।
तद् वन्दे भावनातीतं स्वात्मभूतं परं महः ॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

हे देवगण ! हम कानोंसे कल्याणमय वचन सुनें; यज्ञकर्ममें समर्थ होकर नेत्रोंसे शुभ दर्शन करें; अपने स्थिर अङ्ग और शरीरोंसे स्तुति करनेवाले हमलोग देवताओंके लिये हितकर आयुका भोग करें । त्रिविध तापकी शान्ति हो ।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

महान् कीर्तिमान् इन्द्र हमारा कल्याण करे, परम ज्ञानवान् [अथवा परम धनवान्] पूषा हमारा कल्याण करे, अरिष्टोंके [नाशके] लिये चक्ररूप गरुड हमारा कल्याण करे तथा बृहस्पतिजी हमारा कल्याण करें । त्रिविध तापकी शान्ति हो ।

Scanned with CamScanner

प्रथम मुण्डक

प्रथम खण्ड

सम्बन्धभाष्यम्

ॐ ब्रह्मा देवानामित्याद्या-
उपक्रमः
थर्वणोपनिषत् । अस्याश्च
विद्यासम्प्रदायकर्तृपार-
म्पर्यलक्षणसम्बन्धम् आदावेवाह
स्वयमेव स्तुत्यर्थम् । एवं हि
महद्भिः परमपुरुषार्थसाधनत्वेन
गुरुणायासेन लब्धा विद्येति
श्रोतृबुद्धिप्ररोचनाय विद्यां मही-
करोति । स्तुत्या प्ररोचितायां
हि विद्यायां सादराः प्रवर्तेरन्निति ।
प्रयोजनेन तु विद्यायाः
ब्रह्मविद्यायाः साध्यसाधनलक्षण-
सम्बन्धप्रयोजन- सम्बन्धम् उत्तरत्र
निरूपणम् वक्ष्यति 'भिद्यते
हृदयग्रन्थिः' (मु०उ०२ । २।८)

'ॐ ब्रह्मा देवानाम्' इत्यादि [वाक्यसे आरम्भ होनेवाली] उपनिषद् अथर्ववेदकी है । श्रुति इसकी स्तुतिके लिये इसके विद्या-सम्प्रदायके कर्ताओंकी परम्परारूप सम्बन्धका सबसे पहले स्वयं ही वर्णन करती है । इस प्रकार यह दिखलाकर कि 'इस विद्याको परमपुरुषार्थके साधनरूपसे महा-पुरुषोंने अत्यन्त परिश्रमसे प्राप्त किया था' श्रुति श्रोताओंकी बुद्धिमें इसके लिये रुचि उत्पन्न करनेके लिये इसकी महत्ता दिखलाती है, जिससे कि लोग स्तुतिके कारण रुचिकर प्रतीत हुई विद्याके उपार्जनमें आदरपूर्वक प्रवृत्त हों ।

अपने प्रयोजनके साथ ब्रह्म-विद्याका साध्यसाधनरूप सम्बन्ध आगे चलकर 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः' इत्यादि मन्त्रद्वारा बतलाया जायगा ।

Scanned with CamScanner

इत्यादिना, अत्र चापरशब्दवाच्यायामृग्वेदादिलक्षणायां विधिप्रतिषेधमात्रपरायां विद्यायां संसारकारणाविद्यादिदोषनिवर्तकत्वं नास्तीति स्वयमेवोक्त्वा परापरविद्याभेदकरणपूर्वकम् 'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः' (मु० उ० १।२।८) इत्यादिना तथा परप्राप्तिसाधनं सर्वसाधनसाध्यविषयवैराग्यपूर्वकं गुरुप्रसादलभ्यां ब्रह्मविद्यामाह—'परीक्ष्य लोकान्' (मु० उ० १।२।१२) इत्यादिना । प्रयोजनं चासकृद्ब्रवीति 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मु०उ०३।२।९) इति 'परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे' (मु० उ० ३।२।६) इति च ।

यहाँ तो 'विधि-प्रतिषेधमात्रमें तत्पर अपर शब्दवाच्य ऋग्वेदादिरूप विद्या संसारके कारणभूत अज्ञान आदि दोषकी निवृत्ति करनेवाली नहीं है'—यह बात 'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः' इत्यादि वाक्योंसे विद्याके पर और अपर भेद करते हुए स्वयं ही बतलाकर फिर 'परीक्ष्य लोकान्' इत्यादि वाक्योंसे साधन-साध्यरूप सब प्रकारके विषयोंसे वैराग्यपूर्वक गुरुकृपासे प्राप्य ब्रह्मविद्याको ही परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन बतलाया है । तथा 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' 'परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे' इत्यादि वाक्योंसे उसका प्रयोजन तो बारंबार बतलाया है ।

ज्ञानमात्रे यद्यपि सर्वाश्रमिणाम्
संन्यासनिष्ठैव अधिकारस्तथापि
ब्रह्मविद्या संन्यासनिष्ठैव ब्रह्म-
मोक्षसाधनम् विद्या मोक्षसाधनं
न कर्मसहितेति 'भैक्षचर्यां
चरन्तः' (मु० उ० १।२।११)
'संन्यासयोगात्' (मु० उ०
३।२।६) इति च ध्रुवन्दर्शयति ।

यद्यपि ज्ञानमात्रमें सभी आश्रमवालोंका अधिकार है तथापि ब्रह्मविद्या केवल संन्यासगत होनेपर ही मोक्षका साधन होती है कर्मसहित नहीं—यह बात श्रुति 'भैक्षचर्यां चरन्तः' 'संन्यासयोगात्' इत्यादि कहती हुई प्रदर्शित करती है ।

Scanned with CamScanner

विद्याकर्मविरोधाच्च । न हि ब्रह्मात्मैकत्वदर्शनेन सह कर्म स्वप्नेऽपि सम्पादयितुं शक्यम्, विद्यायाः कालविशेषाभावाद्-नियतनिमित्तत्वात्कालसङ्कोचानुपपत्तिः ।

ज्ञानकर्मविरोध-निरूपणम्

इसके सिवा विद्या और कर्मका विरोध होनेके कारण भी यही सिद्ध होता है । ब्रह्मात्मैक्यदर्शनके साथ तो कर्मोंका सम्पादन स्वप्नमें भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि विद्यासम्पादनका कोई कालविशेष नहीं है और न उसका कोई नियत निमित्त ही है; अतः किसी काल-विशेषद्वारा उसका संकोच कर देना उचित नहीं है ।

यत्तु गृहस्थेषु ब्रह्मविद्या-सम्प्रदायकर्तृत्वादि लिङ्गं न तत्स्थितन्यायं बाधितुमुत्सहते । न हि विधिशतेनापि तमःप्रकाश-योरेकत्र सद्भावः शक्यते कर्तुं किमुत लिङ्गैः केवलैरिति ।

गृहस्थोंमें जो ब्रह्मविद्याका सम्प्रदायकर्तृत्व आदि लिङ्ग (अस्तित्व-सूचक निदर्शन) देखा गया है वह पूर्वप्रदर्शित स्थिरतर नियमको बाधित करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि तम और प्रकाशकी एकत्र स्थिति तो सैकड़ों विधियोंसे भी नहीं की जा सकती, फिर केवल लिङ्गोंकी तो बात ही क्या है ?

एवमुक्तसम्बन्धप्रयोजनाया उपनिषच्छब्द-निरुक्तिः उपनिषदोऽल्पाक्षरं ग्रन्थविवरणमारभ्यते । य इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्म-भावेन श्रद्धाभक्तिपुरःसराः

इस प्रकार जिसके सम्बन्ध और प्रयोजनका निर्देश किया है उस [मुण्डक] उपनिषद्की यह संक्षिप्त व्याख्या आरम्भ की जाती है । जो लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आत्मभावसे इस ब्रह्मविद्याके समीप

Scanned with CamScanner

मन्तस्तेषां गर्भजन्मजरारोगाद्यनर्थपूगं निशातयति परं वा ब्रह्म गमयत्यविद्यादिसंसारकारणं चात्यन्तमवसादयति विनाशयतीत्युपनिषत्, उपनिपूर्वस्य सदेरेवमर्थस्मरणात् ।

जाते हैं यह उनके गर्भ, जन्म, जरा और रोग आदि अनर्थसमूहका छेदन करती है, अथवा उन्हें परब्रह्मको प्राप्त करा देती है, या संसारके कारणरूप अविद्या आदिका अत्यन्त अवसादन—विनाश कर देती है; इसीलिये इसे 'उपनिषद्' कहते हैं, क्योंकि 'उप' और 'नि' पूर्वक 'सद्' धातुका यही अर्थ माना गया है ।

आचार्यपरम्परा

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

सम्पूर्ण देवताओंमें पहले ब्रह्मा उत्पन्न हुआ । वह विश्वका रचयिता और त्रिभुवनका रक्षक था । उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वाको समस्त विद्याओंकी आश्रयभूत ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया ॥ १ ॥

ब्रह्मा परिवृढो महान्धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यैः सर्वानन्यानतिशेत इति । देवानां द्योतनवतामिन्द्रादीनां प्रथमो गुणैः प्रधानः सन् प्रथमोऽग्रे वा सम्बभूवाभिव्यक्तः सम्यक्स्वातन्त्र्येणेत्यभिप्रायः । न तथा यथा धर्माधर्मवशात्

ब्रह्मा—परिवृढ (सबसे बड़ा हुआ) अर्थात् महान्, जो धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यमें अन्य सबसे बड़ा हुआ था, देवताओं—द्योतन करनेवालों (प्रकाशमानों), इन्द्रादिकोंमें प्रथम—गुणोंद्वारा प्रधानरूपसे अथवा सम्यक् स्वतन्त्रतापूर्वक सबसे पहले उत्पन्न हुआ था यह इसका तात्पर्य है; क्योंकि "जो यह अतीन्द्रिय, अग्राह्य.....है

संसारिणोऽन्ये जायन्ते । "योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्यः···" (मनु० १ । ७) इत्यादिस्मृतेः ।

विश्वस्य सर्वस्य जगतः कर्तोत्पादयिता । भुवनस्योत्पन्नस्य गोप्ता पालयितेति विशेषणं ब्रह्मणो विद्यास्तुतये । स एवं प्रख्यातमहत्त्वो ब्रह्मा ब्रह्मविद्यां ब्रह्मणः परमात्मनो विद्यां ब्रह्मविद्यां 'येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यम्' (मु० उ० १ । २ । १३) इति विशेषणात्परमात्मविषया हि सा ब्रह्मणा वाग्रजेनोक्तेति ब्रह्मविद्या तां सर्वविद्याप्रतिष्ठां सर्वविद्याभिव्यक्तिहेतुत्वात्सर्वविद्याश्रयामित्यर्थः; सर्वविद्यावेद्यं वा वस्त्वनयैव विज्ञायत इति, "येनाश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्" (छा० उ० ६ । १ । ३) इति श्रुतेः ।

[वह परमात्मा स्वयं उत्पन्न हुआ]" इत्यादि स्मृतिके अनुसार वह, जैसे अन्य संसारी जीव उत्पन्न होते है उस तरह धर्म या अधर्मके वशीभूत होकर उत्पन्न नही हुआ ।

'विश्व अर्थात् सम्पूर्ण जगत्का कर्ता—उत्पन्न करनेवाला तथा उत्पन्न हुए भुवनका गोप्ता—पालन करनेवाला' ये ब्रह्माके विशेषण [उसकी उपदेश की हुई] विद्याकी स्तुतिके लिये है । जिसका महत्त्व इस प्रकार प्रसिद्ध है उस ब्रह्माने ब्रह्मविद्याको—ब्रह्म यानी परमात्माकी विद्याको, जो 'जिससे अक्षर और सत्य पुरुषको जानता है' ऐसे विशेषणसे युक्त होनेके कारण परमात्मसम्बन्धिनी ही है अथवा अग्रजन्मा ब्रह्माके द्वारा कही जानेके कारण जो ब्रह्मविद्या कहलाती है उस ब्रह्मविद्याको, जो समस्त विद्याओंकी अभिव्यक्तिकी हेतुभूत होनेसे, अथवा "जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है तथा अज्ञात ज्ञात हो जाता है" इस श्रुतिके अनुसार इसीसे सर्वविद्यावेद्य वस्तुका ज्ञान होता है, इसलिये जो सर्वविद्याप्रतिष्ठा यानी सम्पूर्ण विद्याओंकी आश्रयभूता है, अपने ज्येष्ठ पुत्र

Scanned with CamScanner

सर्वविद्याप्रतिष्ठामिति च स्तौति। विद्यामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह। ज्येष्ठश्चासौ पुत्रश्चानेकेषु ब्रह्मणः सृष्टिप्रकारेष्वन्यतमस्य सृष्टिप्रकारस्य प्रमुखे पूर्वमथर्वा सृष्ट इति ज्येष्ठस्तस्मै ज्येष्ठपुत्राय प्राहोक्तवान् ॥ १ ॥

अथर्वासे कहा। यहाँ 'सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्' इस पदसे विद्याकी स्तुति करते हैं। जो ज्येष्ठ (सबसे बड़ा) पुत्र हो उसे ज्येष्ठ पुत्र कहते हैं। ब्रह्माकी सृष्टिके अनेकों प्रकारोंमें किसी एक सृष्टिप्रकारके आदिमे सबसे पहले अथर्वाको ही उत्पन्न किया गया था, इसलिये वह ज्येष्ठ है। उस ज्येष्ठ पुत्रसे कहा ॥१॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा-
थर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह
भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥

अथर्वाको ब्रह्माने जिसका उपदेश किया था वह ब्रह्मविद्या पूर्वकालमे अथर्वाने अङ्गीको सिखायी। अङ्गीने उसे भरद्वाजके पुत्र सत्यवहसे कहा तथा भरद्वाजपुत्र (सत्यवह) ने इस प्रकार श्रेष्ठसे कनिष्ठको प्राप्त होती हुई वह विद्या अङ्गिरासे कही ॥२॥

यामेतामथर्वणे प्रवदेतावद्-ब्रह्मविद्यां ब्रह्मा तामेव ब्रह्मणः प्राप्तामथर्वा पुरा पूर्वमुवाचोक्तवानङ्गिरेऽङ्गिर्नाम्ने ब्रह्मविद्याम्। स चाङ्गिर्भारद्वाजाय भरद्वाज-

जिस ब्रह्मविद्याको ब्रह्माने अथर्वासे कहा था, ब्रह्मासे प्राप्त हुई उसी ब्रह्मविद्याको पूर्वकालमें अथर्वाने अङ्गिर्से यानी अङ्गिर् नामक मुनिसे कहा। फिर उस अङ्गिर् मुनिने उसे भारद्वाज सत्यवहसे यानी भरद्वाजगोत्रमें उत्पन्न

Scanned with CamScanner

गोत्राय सत्यवहाय सत्यवहनाम्ने प्राह प्रोक्तवान्। भारद्वाजोऽङ्गिरसे स्वशिष्याय पुत्राय वा परावरां परस्मात्परस्मादवरेण प्राप्तेति परावरा परापरसर्वविद्याविषय-व्याप्तेर्वा तां परावरामङ्गिरसे प्राहेत्यनुषङ्गः ॥ २ ॥

हुए सत्यवहनामक मुनिसे कहा। तथा भारद्वाजने अपने शिष्य अथवा पुत्र अङ्गिरासे वह परावरा—पर (उत्कृष्ट) से अवर (कनिष्ठ) को प्राप्त हुई, अथवा पर और अवर सब विद्याओंके विषयोंकी व्याप्तिके कारण 'परावरा' कही जानेवाली वह विद्या अङ्गिरासे कही। इस प्रकार 'परावराम्' इस कर्मपदका पूर्वोक्त 'प्राह' क्रियासे सम्बन्ध है ॥ २ ॥

शौनककी गुरूपसत्ति और प्रश्न

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥

शौनकनामक प्रसिद्ध महागृहस्थने अङ्गिराके पास विधिपूर्वक जाकर पूछा—'भगवन्! किसके जान लिये जानेपर यह सब कुछ जान लिया जाता है?' ॥ ३ ॥

शौनकः शुनकस्यापत्यं महाशालो महागृहस्थोऽङ्गिरसं भारद्वाजशिष्यमाचार्यं विधिवद्यथाशास्त्रमित्येतत्; उपसन्न उपगतः सन्पप्रच्छ पृष्टवान्। शौनकाङ्गिरसोः संबन्धादर्वाग्

महाशाल—महागृहस्थ शौनक—शुनकके पुत्रने भारद्वाजके शिष्य आचार्य अङ्गिराके पास विधिवत् अर्थात् शास्त्रानुसार जाकर पूछा। शौनक और अङ्गिराके सम्बन्धसे पश्चात् 'विधिवत्' विशेषण मिलनेसे

Scanned with CamScanner

विधिवद्विशेषणादुपसदनविधेः पूर्वेषामनियम इति गम्यते। मर्यादाकरणार्थं मध्यदीपिकान्यायार्थं वा विशेषणम्; अस्मदादिष्वप्युपसदनविधेरिष्टत्वात्।

यह जाना जाता है कि इनसे पूर्व आचार्योंमें [गुरूपसदनका] कोई नियम नहीं था। अतः इसकी मर्यादा निर्दिष्ट करनेके लिये अथवा मध्यदीपिकान्यायके लिये* यह विशेषण दिया गया है, क्योंकि यह उपसदनविधि हमलोगोंमें भी माननीय है।

किमित्याह—कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते नु इति वितर्के, भगवो हे भगवन्सर्वं यदिदं विज्ञेयं विज्ञातं विशेषेण ज्ञातमवगतं भवतीति एकस्मिञ्ज्ञाते सर्वविद्भवतीति शिष्टप्रवादं श्रुतवाञ्शौनकस्तद्विशेषं विज्ञातुकामः सन्कस्मिन्निति वितर्कयन्पप्रच्छ। अथवा लोकसामान्यदृष्ट्या ज्ञात्वैव पप्रच्छ। सन्ति लोके

शौनकने क्या पूछा, सो बतलाते हैं—भगवः—हे भगवन्! 'कस्मिन्नु' किस वस्तुके जान लिये जानेपर यह सब विज्ञेय पदार्थ विज्ञात—विशेषरूपसे ज्ञात यानी अवगत हो जाता है? यहाँ 'नु' का प्रयोग वितर्क (संशय) के लिये किया गया है। शौनकने 'एकहीको जान लेनेपर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है' ऐसी कोई सभ्य पुरुषोंकी कहावत सुनी थी। उसे विशेषरूपसे जाननेकी इच्छासे ही उसने 'कस्मिन्नु' इत्यादि रूपसे वितर्क करते हुए पूछा। अथवा लोकोंकी सामान्य दृष्टिसे जान-बूझकर ही पूछा। लोकमें

* देहलीपर दीपक रखनेसे उसका प्रकाश भीतर-बाहर दोनों ओर पड़ता है—इसीको मध्यदीपिका या देहलीदीपन्याय कहते हैं। अतः यदि यह कथन इस न्यायसे ही हो तो यह समझना चाहिये कि गुरूपसदन-विधि इससे पूर्व भी थी और उससे पीछे हमलोगोंके लिये भी आवश्यक है; और यदि यह कथन मर्यादा निर्दिष्ट करनेके लिये हो तो यह समझना चाहिये कि यहींसे इस पद्धतिका प्रारम्भ हुआ।

Scanned with CamScanner

सुवर्णादिशकलभेदाः सुवर्णत्वाद्येकत्वविज्ञानेन विज्ञायमाना लौकिकैः । तथा किं न्वस्ति सर्वस्य जगद्भेदस्यैकं कारणम्, यदेकस्मिन्विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवतीति ।

सुवर्णादि खण्डोंके ऐसे भेद हैं जो सुवर्णरूप होनेके कारण लौकिक पुरुषोंद्वारा [स्वर्णदृष्टिसे] उनकी एकताका ज्ञान होनेपर जान लिये जाते हैं । इसी प्रकार [प्रश्न होता है कि] 'सम्पूर्ण जगद्भेदका वह एक कारण कौन-सा है जिस एकके ही जान लिये जानेपर यह सब कुछ जान लिया जाता है ?'

नन्वविदिते हि कस्मिन्निति प्रश्नोऽनुपपन्नः । किमस्ति तदिति तदा प्रश्नो युक्तः । सिद्धे ह्यस्तित्वे कस्मिन्निति स्यात्, यथा कस्मिन्निधेयमिति ।

शङ्का-जिस वस्तुका ज्ञान नहीं होता उसके विषयमें 'कस्मिन' (किसको)* इस प्रकार प्रश्न करना तो बन नहीं सकता । उस समय तो 'क्या वह है ?' ऐसा प्रश्न ही उचित है; फिर उसका अस्तित्व सिद्ध हो जानेपर ही 'कस्मिन्' ऐसा प्रश्न हो सकता है । जैसा कि [अनेक आधारोंका ज्ञान होनेपर] 'किसमें रक्खा जाय' ऐसा प्रश्न किया जाता है ।

नः अक्षरबाहुल्यादायासभीरुत्वात्प्रश्नः सम्भवत्येव कस्मिन्नेकस्मिन्विज्ञाते सर्ववित्स्यात् इति ॥ ३ ॥

समाधान—ऐसा मत कहो, क्योंकि [तुम्हारे कथनानुसार प्रश्न करनेसे] अक्षरोंकी अधिकता होती है और अधिक आयासका भय रहता है, अतः 'किस एकके ही जान लेनेपर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ?' ऐसा प्रश्न बन सकता है ॥ ३ ॥

* क्योंकि 'किस' या 'कौन' सर्वनामका प्रयोग वहीं होता है जहाँ अनेकोंकी सत्ता स्वीकारकर उनमेंसे किसी एकका निश्चय करना होता है ।

Scanned with CamScanner

अङ्गिराका उत्तर-विद्या दो प्रकारकी है

तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥ ४ ॥

उससे उसने कहा—'ब्रह्मवेत्ताओंने कहा है कि दो विद्याएँ जानने-योग्य हैं—एक परा और दूसरी अपरा' ॥ ४ ॥

तस्मै शौनकायाङ्गिरा आह किलोवाच । किमित्युच्यते । द्वे विद्ये वेदितव्ये इत्येवं ह स्म किल यद्ब्रह्मविदो वेदार्थाभिज्ञाः परमार्थदर्शिनो वदन्ति । के ते इत्याह—परा च परमात्मविद्या । अपरा च धर्माधर्मसाधन-तत्फलविषया ।

उस शौनकसे अङ्गिराने कहा । क्या कहा ? सो बतलाते हैं—'दो विद्याएँ वेदितव्य अर्थात् जानने-योग्य हैं ऐसा जो ब्रह्मविद्—वेदके अर्थको जाननेवाले परमार्थदर्शी हैं वे कहते हैं । वे दो विद्याएँ कौन-सी हैं ? इसपर कहते हैं—परा अर्थात् परमात्मविद्या और अपरा—धर्म, अधर्मके साधन और उनके फलसे सम्बन्ध रखनेवाली विद्या ।'

ननु कस्मिन्विदिते सर्वविद्भवतीति शौनकेन पृष्टं तस्मिन्नुक्तव्येऽपृष्टमाहाङ्गिरा द्वे विद्ये इत्यादिना ।

शङ्का—शौनकने तो यह पूछा था कि 'किसको जान लेनेपर पुरुष सर्वज्ञ हो जाता है ?' उसके उत्तरमें जो कहना चाहिये था उसकी जगह 'दो विद्याएँ हैं' आदि बातें तो अङ्गिराने बिना पूछी ही कही हैं ।

नैष दोषः; क्रमापेक्षत्वात् प्रतिवचनस्य । अपरा हि विद्या-विद्या सा निराकर्तव्या । तद्-

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उत्तर तो क्रमकी अपेक्षा रखता है । अपरा विद्या तो अविद्या ही है; अतः उसका निराकरण किया जाना चाहिये । उसके

Scanned with CamScanner

विषये हि विदिते न किञ्चित्तत्त्वतो विदितं स्यादिति । निराकृत्य हि पूर्वपक्षं पश्चात्सिद्धान्तो वक्तव्यो भवतीति न्यायात् ॥ ४ ॥

विषयमें जान लेनेपर तो तत्त्वतः कुछ भी नहीं जाना जाता, क्योंकि यह नियम है कि 'पहले पूर्वपक्षका खण्डन कर पीछे सिद्धान्त कहा जाता है' ॥ ४ ॥

परा और अपरा विद्याका स्वरूप

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—यह अपरा है तथा जिससे उस अक्षर परमात्माका ज्ञान होता है वह परा है ॥ ५ ॥

तत्र कापरेत्युच्यते—ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इत्येते चत्वारो वेदाः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमित्यङ्गानि षडेषापरा विद्या ।

उनमें अपरा विद्या कौन-सी है, सो बतलाते हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार वेद तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—ये छः वेदाङ्ग अपरा विद्या कहे जाते हैं ।

अथेदानीमियं परा विद्या उच्यते यया तद्वक्ष्यमाणविशेषणम् अक्षरमधिगम्यते प्राप्यते; अधि-

अब यह परा विद्या बतलायी जाती है, जिससे आगे (छठे मन्त्रमें) कहे जानेवाले विशेषणोंसे युक्त उस अक्षरका अधिगम अर्थात् प्राप्ति होती है, क्योंकि 'अधि'पूर्वक

Scanned with CamScanner

पूर्वस्य गमेः प्रायशः प्राप्त्यर्थत्वात्। न च परप्राप्तेरवगमार्थस्य भेदोऽस्ति। अविद्याया अपाय एव हि परप्राप्तिर्नार्थान्तरम्।

'गम' धातु प्रायः 'प्राप्ति' अर्थमें प्रयुक्त होती है; तथा परमात्माकी प्राप्ति और उसके ज्ञानके अर्थमें कोई भेद भी नहीं है; क्योंकि अविद्याकी निवृत्ति ही परमात्माकी प्राप्ति है, इससे भिन्न कोई अन्य वस्तु नहीं।

विद्यायाः परापरभेदमीमांसा

ननु ऋग्वेदादिबाह्या तर्हि सा कथं परा विद्या स्यान्मोक्षसाधनं च। "या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः" (मनु० १२।९५) इति हि स्मरन्ति। कुदृष्टित्वान्निष्फलत्वादनादेया स्यात्। उपनिषदां च ऋग्वेदादिबाह्यत्वं स्यात्। ऋग्वेदादित्वे तु पृथक्करणमनर्थकम् अथ परेति।

शङ्का—तब तो वह (ब्रह्मविद्या) ऋग्वेदादिसे बाह्य है, अतः वह परा विद्या अथवा मोक्षकी साधनभूत किस प्रकार हो सकती है? स्मृतियाँ तो कहती हैं कि "जो वेदबाह्य स्मृतियाँ और जो कोई कुदृष्टियाँ (कुविचार) हैं वे परलोकमें निष्फल और नरककी साधन मानी गयी हैं।" अतः कुदृष्टि होनेसे निष्फल होनेके कारण वह ग्राह्य नहीं हो सकती। तथा इससे उपनिषद् भी ऋग्वेदादिसे बाह्य माने जायँगे और यदि इन्हें ऋग्वेदादिमें ही माना जायगा तो 'अथ परा' आदि वाक्यसे जो परा विद्याको पृथक् बतलाया गया है वह व्यर्थ हो जायगा।

न; वेद्यविषयविज्ञानस्य विवक्षितत्वात्। उपनिषद्वेद्याक्षर-

समाधान—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि [परा विद्यासे] वेद्यविषयक ज्ञान बतलाना अभीष्ट है।

Scanned with CamScanner

विषयं हि विज्ञानमिह परा विद्येति प्राधान्येन विवक्षितं नोपनिषच्छब्दराशिः। वेदशब्देन तु सर्वत्र शब्दराशिर्विवक्षितः। शब्दराश्यधिगमेऽपि यत्नान्तरमन्तरेण गुर्वभिगमनादिलक्षणं वैराग्यं च नाक्षराधिगमः सम्भवतीति पृथक्करणं ब्रह्मविद्यायाः परा विद्येति कथनं चेति ॥ ५ ॥

यहाँ प्रधानतासे यही बतलाना इष्ट है कि उपनिषद्वेद्य अक्षरविषयक विज्ञान ही परा विद्या है, उपनिषद्की शब्दराशि नहीं। और 'वेद' शब्दसे सर्वत्र शब्दराशि ही कही जाती है। शब्दसमूहका ज्ञान हो जानेपर भी गुरूपसत्ति आदिरूप प्रयत्नान्तर तथा वैराग्यके बिना अक्षरब्रह्मका ज्ञान नहीं हो सकता; इसीलिये ब्रह्मविद्याका पृथक्करण और 'वह परा विद्या है' ऐसा कहा गया है ॥ ५ ॥

यथा विधिविषये कर्त्राद्यनेककारकोपसंहारद्वारेण वाक्यार्थज्ञानकालाद् अन्यत्रानुष्ठेयोऽर्थोऽस्ति अग्निहोत्रादिलक्षणो न तथेह परविद्याविषये; वाक्यार्थज्ञानसमकाल एव तु पर्यवसितो भवति। केवलशब्दप्रकाशितार्थज्ञानमात्रनिष्ठान्यतिरिक्ताभावात्।

परविद्याया वाक्यार्थज्ञान-जन्यत्वम्

जिस प्रकार विधि (कर्मकाण्ड) के सम्बन्धमें [उसका प्रतिपादन करनेवाले] वाक्योंका अर्थ जाननेके समयसे भिन्न कर्ता आदि अनेकों कारकों (क्रियानिष्पत्तिके साधनों) के उपसंहारद्वारा अग्निहोत्र आदि अनुष्ठेय अर्थ रह जाता है, उस प्रकार परा विद्याके सम्बन्धमें नहीं होता। इसका कार्य तो वाक्यार्थ-ज्ञानके समकालमें ही समाप्त हो जाता है, क्योंकि केवल शब्दोंके योगसे प्रकाशित होनेवाले अर्थ-ज्ञानमें स्थिति कर देनेसे भिन्न इसका और कोई प्रयोजन नहीं है। अतः

Scanned with CamScanner